ओ३म् ॥

नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय

अनुभ्रमोच्छेदन

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वती जी के

शिष्य भीमसेन शर्मा ने

राजा शिवप्रसाद जी के द्वितीय निवेदन के उत्तर में

बनाया

अजमेरनगरस्थ

वैदिकयन्त्रालय में छप कर प्रकाशित हुआ

संवत् १९५५

तृतीयवार १००० मूल्य)॥

ओ३म्

॥ अनुभ्रमोच्छेदन ॥

यस्या नरो बिभ्यति वेदबाह्यास्तया हि युक्तं जनसेनया यत्।

तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति ॥ १ ॥

भूमिका।

मैं ने विचारा था कि राजा जी और स्वामी जी ने एक २ बार लिखा है आगे इस का प्रपञ्च न बढ़े गा परन्तु वैसा न हुआ और उन के अनुगामी लोगों ने समाचार पत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैं ने यह जान भी लिया कि स्वामी जी अपने नाम से इस पर कुछ भी न लिखें और न छपवावें गे क्योंकि इस पर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बालशास्त्री जी की सम्मति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य्य ने भी इस के प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामीजी को तो इस पर लिखना योग्य ही नहीं, क्योंकि वे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इस पर लिखने में प्रवृत्त हुआ यद्यपि इन महाशयों के संमुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़ कर देखने से कुछ इस से भी तत्त्व निकले गा और जो कुछ इस में भूल चूक रहे गी उस को सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसाद जी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझ को भी आगे लिखना अवश्य न होगा जो राजा जी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उस में स्वामी जी के लेख पर निरर्थक आदि दोष दिये हैं उन और इन दोनों पुस्तकों के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपातरहित होकर देखें गे तब अवश्य निश्चय करलें गे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥

इति भूमिका ॥

तत्र लौकिकास्तावत् । गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति । वैदिकाः खल्वपि । शन्नो देवीरभिष्टये । इषे त्वोर्जे त्वा । अग्निमीळेपुरोहितम् । अग्न आयाहि वीतय इति ।

अब यहां अन्तःस्थ नेत्रों से देखना चाहिये कि वैदिक शब्द में केवल ४ मन्त्र संहिताओं के उदाहरण दिये हैं जो ब्राह्मण भी वेद होते तो वैदिक शब्दों में उन का उदाहरण क्यों न देते ? अब कोई यह कहे कि लौकिक शब्दों में जिस ब्राह्मण शब्द का उदाहरण दिया है वह नपुंसक लिङ्ग न होने से ग्रन्थवाची शब्द नहीं है किन्तु पुंलिङ्ग होने से मनुष्यों में जाति विशेष का नाम है तो उस से पूछना चाहिये कि नपुंसक लिङ्ग ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का वैदिक शब्दों में पाठ क्यों न किया ? । हां प्रकरण से अर्थ की सङ्गति होती है सो यहां किसी का प्रकरण नहीं है । यहां पतञ्जलि जी महाराज के प्रमाण से यह सिद्ध होगया कि मन्त्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण नहीं । अब स्वामी जी पर जो प्रश्न था उस का तो यह उत्तर पतञ्जलि ऋषि के प्रमाण से हुआ परन्तु वही प्रश्न राजा जी के ऊपर गिरता है कि राजा जी यह बतलावेंकि पाणिनि आदि महर्षियों ने ऐसा कहां लिखा है कि मन्त्र और ब्राह्मणभाग दोनों वेद हैं, अस्तु तावत् निवे० २ । पृष्ठ ५ । पं० १८ । पाणिनि ने तो जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि, कहा अर्थात् वेद में अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मन्त्र वा ब्राह्मण का प्रयोजन देखा (मन्त्रे) वा (ब्राह्मणे) कहा और जहां मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां 'भाषायाम्' कहा, राजा जी को यह लिखना तो सुगम हुआ परन्तु निम्नलिखित प्रमाण पाणिनि सूत्र और वेदमन्त्रआदि का अर्थ करके अपने पक्ष में घटाना सुगम क्यों कर होसके गा अब देखिये । छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि । अ० ४ । पा० २ सू० ६६ । इस सूत्र में प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण को अध्येतृ वेदितृ विषयता विधान की है अर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण का अध्येतृ वेदितृ अभिधेय में ही प्रयोग हो स्वतन्त्र न हो । अब राजा जी के इस लेखानुसार कि (जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा) इस से पाणिनि के इस सूत्र में ब्राह्मण ग्रहण व्यर्थ होता है । क्योंकि जो छन्द के कहने से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही ग्रहण हो जाता है तो फिर यहां ब्राह्मण का पृथक् ग्रहण क्यों किया

इस से स्पष्ट ज्ञापक होता हैं कि छन्द से ब्राह्मण पृथक् हैं । निवे० २ । पृष्ठ ५ ।
पं० २१ । से (भला जैमिनि महर्षि के पूर्वमीमांसा को तो स्वामी जी महाराज मानते
हैं उस में इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावें गे) तच्चोदकेषु मन्त्राख्या । अ० १ पा०
२ सू० ३२ । शेषे ब्राह्मणशब्दः । अ० २ । पाद १ । सू० ३३ इस का अर्थ बहु-
त स्पष्ट है वेद का मन्त्रों से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण) यह अनुभवार्थ राजा जी
ने शवर स्वामी की टीका में से सुना होगा परन्तु यहां यह भी विचार करना उन को
योग्य था कि इन सूत्रों के सम्बन्ध में कहीं वेदसंज्ञानिर्वचनाधिकरण है वा नहीं किन्तु
यहां तो केवल मन्त्रनिर्वचनाधिकरण और ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरण है इस से फिर मन्त्र
और ब्राह्मण दोनों की वेदसंज्ञा है यह अभिप्राय कहां से सिद्ध हो सकता है जो इस
प्रकरण में ऐसा होता कि (अथ वेदनिर्वचनाधिकरणम्) तो राजा जी का अभिप्राय
अवश्य सिद्ध हो जाता । परमात्मा ने वेदस्थ वाक्यों से सर्व विद्याभिधान कर दिया है अ-
ब इन में शेष अर्थात् बाकी पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, व्याख्या करनी, करानी आदि है और
थी भी जो थी सो ब्रह्मा से ले कर जैमिनिमुनिपर्यन्त महार्षि महाशय लोगों ने कर दी है
जिस से ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान हैं इसी से इन का ना-
म ब्राह्मण रक्खा है अर्थात् " ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात्
शेषभूतानि सन्तीति" । परन्तु जहां से इन सूत्रों के अर्थ में राजा जी आदि को भ्रम
हुआ है सो शवर स्वामी जी की इसी सूत्र पर यह व्याख्या है (अथ किंलक्षणं ब्रा-
ह्मणम्) (मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः) विचार योग्य बात है कि न जाने शवर स्वामी
ने इन दो सूत्रों में वेद शब्द कहां से लिया और इन की अद्भुत कथा को देखिये कि
(प्रश्न) ब्राह्मण का क्या लक्षण है (उत्तर) मन्त्र और ब्राह्मण वेद है विद्वान् लो-
ग विचार लेंगे कि जैसा प्रश्न किया था वैसा ही उत्तर शवर स्वामी ने दिया है वा न-
हीं यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं किन्तु । आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे
। इस न्याय के तुल्य यह व्याख्या है ऐसा ही निवे० दू० २ । पृष्ठ ५ । पं० २५ ।
निदान जब मैं ने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रामा-
णिक उत्तर पाया और न स्वामी जी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ स-
म्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामी जी महाराज ने किसी मेम वा साहब से कोई नया त-
र्क और न्याय, रूस, अमरिका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया
हो, स्वामी जी ने जो भूमिका में गोतम न्याय का प्रमाण, वेदब्राह्मण विषय में लिखा है

उस को वही पुरुष समझ सकता है कि जिस ने उन ग्रन्थों की शैली देखी हो । विना पढ़े सब विद्या किसी को नहीं आ जाती । और जिन्हों ने उन शास्त्रों में अभ्यास ही नहीं किया वेही ऐसा अनर्गल लिख सकते हैं कि गोतम और कणाद के तर्क न्याय से अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर न पाया इत्यादि । अब राजा जी को शास्त्रों में अभ्यास करना अवश्य हुआ क्योंकि उन के प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता । और स्वामी जी महाराज जो किसी दूसरी विलायत का तर्क न्याय सीख भी लेते तो क्या आश्चर्य और कौनसा यह बुरा काम था और जो सीख लेते तो अपने ग्रन्थों में भी प्रमाण के लिये अवश्य लिखते वा लिखवा लेते । इस से स्पष्ट विदित होता है कि राजा जी ने ही उन विलायतियों से तर्क न्याय कुछ पढ़ा, नहीं तो इस का प्रसङ्ग ही क्या था। ठीक है— यादृशी भावना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी । इन के प्रश्नों का उत्तर जब ऋषि मुनियों के ग्रन्थों से भी न हुआ तो सब ऋषियों से बढ़के राजा जी हो गये इस से स्पष्ट सब महात्मा ऋषि लोगों की निन्दा आ जाती है (निवे० २ । पृष्ठ ६ पं० ४ । फरङ्गिस्तान के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशीराजस्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया बहुत अचरज में आये और कहने लगे हम तो स्वामी जी महाराज को बड़ा पण्डित जानते थे पर अब उन के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये) बस अब तो राजा जी का पक्ष दृढतर सिद्ध हो गया होगा क्योंकि जब उक्त महाशय साहब ने स्वामी जी के मनुष्य होने में भी सन्देह और भ्रमोच्छेदन का भ्रमोत्पादन नाम होने की साक्षी दी है फिर क्या चाहिये क्योंकि महाशयों की साक्षी भी गम्भीर आशय युक्त होती है क्या ऐसी साक्षी को कोई भी मनुष्य माने गा कि स्वामी जी के मनुष्य होने में भी सन्देह है । निवे० २ । पृष्ठ ७ । पं० २० । डाक्टर टीबो साहब की साक्षी का परामर्श यह है देखिये चित्त धरके (दयानन्दसरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते हैं) इस का उत्तर तो भ्रमोच्छेदन के पृष्ठ ११ । पं० २० में यह स्पष्ट लिखा है (परन्तु जो २ वेदाऽनुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं) जो उक्त साहब ध्यानदे कर देखते तो सिवाय एक उपनिषद् के इत्यादि विरुद्ध साक्षी क्यों देते । निवे० २ । पृष्ठ ७ । इसी उत्तर और इस विषय से आगे जो २ उक्त साहब ने लिखा है उस २ का उत्तर इसी उत्तर के आगे भ्रमोच्छेन में लिखा है। निवे० २ । पृष्ठ ८ । पं० १८

(निःसन्देह दयानन्दसरस्वती जी को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वचन को प्रक्षिप्त बतावें जिस के अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेककल्पित मत से विरुद्ध पा कर प्रक्षिप्त कह दे) मुझ को अपनी अल्पबुद्धि से आज तक यह निश्चय था कि सत्याऽसत्य विचार करने का अधिकार सब विद्वानों को है जो यह राजाज्ञावत् डाक्टर टीबो साहब की सम्मति सत्य हो तो ऐसा हो जाय किन्तु जो केवल एक डाक्टर टीबो साहब ने ही ठेका लिया हो कि अन्य सब को अधिकार है केवल स्वामी जी को नहीं कि कौन प्रक्षिप्त और कौन नहीं ऐसा विचार करें जो ऐसा तो डाक्टर टीबो साहब को सम्मति देने और खण्डन मण्डन का अधिकार किस ने दिया है? हम भी पूछ सकते हैं अहो आश्चर्य्य इस सृष्टि में कैसी २ अद्भुत लीला देखने में आती है। निवे० २। पृ० ६। पं० ५। (सो मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि यदि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जमदग्नि आदि का अर्थ यों ही माना जावे तो संहिता के समान ब्राह्मणों को भी वेद भाग अथवा माननीय मानने में उन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों की युक्तियां क्यों न मानी जावें) जो इस बात का प्रमाण किया जावे तो यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त, पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी, पतञ्जलि महामुनिकृत महाभाष्य और पिङ्गलाचार्य्यकृत पिङ्गलसूत्र वेदों के भाष्य वा टीका आदि को भी वेद क्यों न माना जावे क्योंकि जैसे शतपथादि ग्रन्थों से वेदस्थ जमदग्नि आदि शब्दों के अर्थ चक्षु आदि माने जाते हैं वैसे ही निघण्टु और निरुक्त आदि से भी वैदिक शब्दों के संज्ञा और निर्वचन व्याकरण से शब्द, अर्थ और सम्बन्ध और पिङ्गलसूत्रों से गायत्र्यादि छन्द, षड्जादि स्वर आदि की व्याख्या वेदों से अविरुद्ध मानी जाती है तो इन की वेदसंज्ञा कौन कर सकेगा। निवे० २। पृष्ठ ६। पं० १०। (सो यहां भी मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि वेद के नाम से मन्त्रभाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहां वेदों को अपरा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का ज्ञानकाण्ड मानना चाहिये) निवे० १। पृष्ठ ११। पं० १०। (इस का अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के अङ्ग "अपरा" हैं जो "परा" उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें) निवे० १। पृष्ठ १२। पं० २०। (नोट) कि चारों वेदसंहिता और उन के अङ्ग अपरा हैं परा उन के सिवाय अर्थात् उपनिषद् हैं) मुझ को आश्चर्य्य हुआ कि

यहां क्यों राजा जी ने अपने पूर्व लेख से अपर लेख को विरुद्ध लिखा देखो पहिले निवेदन में चारों वेद और छओं अङ्गों को अपरा और उपनिषदों को परा विद्या मानी थी और दूसरे निवेदन में चारों वेदों के कर्मकाण्ड को अपरा और उन के ज्ञानकाण्ड को परा विद्या मानी और दोनों निवेदनों का अभिप्राय यही है कि मन्त्रभागसंहिता और ब्राह्मणभाग को वेदसंज्ञा मानें इसी लिये इतना परिश्रम उठाया और नोट में चारों वेद संहिता अर्थात् मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मान कर ब्राह्मणों को वेदसंज्ञा में लिखना भूल गये दृष्टि कीजिये (तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः) राजाजी के इस लेख ने उन्हीं के अभिप्राय का निराकरण कर दिया इस को न लिखते तो अच्छा था क्योंकि इस लेख में ऋग्यजुः साम और अथर्व चार शब्द वाच्य मन्त्रभागसंहिताओं ही के साथ चार वार वेद शब्द का पाठ है ऐतरेय, शतपथ, छान्दोग्य, ताण्ड्य और गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों की उस वचन में न परा न अपरा में गणना और न ऐतरेय आदि शब्दों के साथ वेद नाम का पाठ है इस लिये यह पूर्वापर विरुद्ध लेख है । निवे० २ । पृष्ठ ९ । पं० १४ (ऐसा ही आज तक वैदिक हिन्दू परम्परा से मानते चले आये हैं) यहां भी मैं राजा जी से यह पूछता हूं कि परम्परा और आज तक इस वाक्यावली का अभिप्राय सृष्ट्युत्पत्ति से ले कर आज तक का समय लिया जाय वा जैसा कि चार पांच पीढ़ियों में परंपरा हो जाती है वैसी ग्रहण की जाय, जो प्रथम पक्ष है तो वैदिक के साथ आर्य्य शब्द लिखना उचित था अर्थात् वैदिक आर्य्य, और जो चार पांच पीढ़ी की परम्परा अभिप्रेत है तो लोकाचार से भी वैदिक हिन्दू लिखना ठीक नहीं क्योंकि भारतवर्षवासी मनुष्यों की हिन्दूसंज्ञा सिवाय यवनग्रन्थ और यवनाचार्य्यों की पाठशाला में पठनपाठनसंसर्ग के विना राजा जी को कहीं न मिले गी और ऋग्वेद से ले कर पूर्वमीमांसापर्य्यन्त संस्कृतग्रन्थों में तो एतद्देश का नाम आर्य्यावर्त्त और इस में रहने वाले मनुष्यों का नाम आर्य्य वा ब्राह्मण आदि संज्ञा ही मिलें गीं परन्तु यह राजा जी को स्वात्मानुभव वा इस देशियों पर द्वेष अथवा आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देशस्थ विलायतियों से शिक्षा पा कर बोध हुआ होगा। यह साधारण बात नहीं किन्तु जो यह वैदिक शब्दों के साथ हिन्दू शब्द का परम्परा में आज तक पढ़ देना । सो राजा जी को विदेशियों की विद्या और शिक्षा का अनुपम फल है । निवे० २ । पृष्ठ० १० । पं० ६ (भला आप के) (शिवप्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से बना ही नहीं उत्तर के

बदले दुर्वचनों की वृष्टि की, यदि काशी जी के पण्डित उन से शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हों तो उत्तर के स्थान में उन्हें वैसे ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलिका लाभ होगा इस से अतिरिक्त उस में से कुछ भी सार नहीं निकले गा (इस पर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इतना हीं लिखता हूं कि जो श्रीयुतबालशास्त्री जी श्रीमत्पंडितवरधुरन्धरअज्ञानतिमिरनाशनैकभास्करविशेषणयुक्त ऐसा कहते हैं और ऐसा निश्चय हो तो स्वामी जी से उन के बड़े २ गम्भीराशय प्रश्नों के उत्तर कभी न बन सकेंगे फिर इस से मेरी और अन्य लाखों किंवा करोड़ों मनुष्यों की यह इच्छा है कि जो कोई विद्वान् स्वामी दयानन्दसरस्वती जी के पक्ष को वेदादिशास्त्रद्वारा निरस्त कर दे तो उन को क्या हीं लाभ न हो पुनः उक्त महाशय इस में क्यों विलम्ब कर रहे हैं और दुर्वचन पुष्पाञ्जलि विषय में इतना ही मैं लिखता हूं काशीस्थ लोगों ने दूषणमालिका, दयानन्दपराभूति, चर्मकार भी स्वामी जी से उत्तम, गालीसहस्र नाम आदि पुस्तक और दण्डनीय, आदि विज्ञापन समाचारों में छपवाया तथा ताली शब्द आदि और जैसा असभ्य अनर्थ लेख स्वामी जी पर किया है और स्वामी जी ने संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ में किस को गालीप्रदान वा दुर्वचन पुष्पाञ्जलि की थी और जैसे पक्षपात क्रोधरहित होने के लिये स्वामी जी को लिखते हैं तो राजा जी ने पक्षपात और क्रोधयुक्त स्वामी जी को कब देखा था ? भला क्या पूर्वोक्त तो सुवचन पुष्पाञ्जलि है और स्वामी जी का लेख दुर्वचन पुष्पाञ्जलि कहा जा सकता है डाक्टर टीबोसाहब बहादुर स्वामीदयानन्दसरस्वती जी के मनुष्य होने में भी सन्देह लिखते हैं क्या डाक्टर टीबोसाहब को अपने सहीस आदि नौकरों के तो मनुष्य होने में कुछ भी संदेह नहीं किन्तु केवल स्वामी जी के मनुष्य होने में संदेह करते हैं क्या यह बात अद्भुत गम्भीराशय और असङ्गत नहीं है ? अहो क्या ऐसे २ लेख को भी बुद्धिमान् लोग अच्छा समझें गे धन्य है ! श्रीयुतशिवप्रसाद जी वादी और धन्य हैं ! उन के साक्षी अर्थात् श्रीमज्जगत्पूज्यस्वामीविशुद्धानन्दसरस्वती जी श्रीमत् पण्डितवरधुरन्धरअज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर बालशास्त्री जी महाराज आर्यजन और विद्वज्जनमण्डलीभूषणकाशीराजस्थापितपाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबोसाहब बहादुर यूरोपियन् कि जिन्हों ने परस्पर मिल कर अपना अभीष्टमत प्रकाशित किया है क्या भला ऐसे २ महाशयों के सामने मेरा लेख हास्यास्पद न होगा और क्या ऐसे २ महात्माओं की साक्षी होने पर राजा जी के विजय होने में किसी को संदेह भी रहा होगा वाह ! वाह !! वाह !!! जो कोई परपक्षनिषेध और स्वपक्ष सिद्ध करे तो

ऐसी ही बुद्धिमत्ता से करे, क्या सहायक अनुमतिदायक भी ऐसे होने योग्य हैं जहां अर्थी ही साक्षी और न्यायाधीश हों वहां जीत क्यों न होवे। क्यों न हों क्या यही सत्पुरुषों का काम है कि जहां तक बने दूसरे की निन्दा अपनी स्तुति करनी अपना सुकर्म समझना हां मैं भी तो राजा शिवप्रसाद जी और स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी वा बालशास्त्री जी और डाकूटर टीबोसहाब बहादुर साक्षी आदि महाशयों के समान स्वामी जी की मनमानी निन्दा और अप्रतिष्ठा करने में तत्पर होता जो उन के प्रशंसनीय गुणकर्मस्वभाव न जानता होता उन की निन्दा और अपमान करने में कमती कभी करता परन्तु वाल्मीकि मुनि ने कहा है कि (सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्) विना किसी के सङ्ग किये उस के गुण दोष विदित नहीं हो सकते संवत् १९२८ से १९३७ के वर्ष पर्यन्त मेरा और स्वामी जी का समागम रहा है जितने वर्ष वा महीने स्वामी जी का सत्सङ्ग मैंने किया है और यथाबुद्धि थोड़े से वेद भी देखे हैं उतने दिन और उतने मुहूर्त्त भी उन का समागम राजा जी आदि ने न किया होगा नहीं तो इतना अटाटूट विरोध कभी न करते। देखिये कै एक बड़े २ सेठ साहूकार रईस बुद्धिमान् पण्डित सज्जन लोग राजे महाराजे स्वामी जी को अत्यन्त मानते श्रद्धा करते और उपदेश का भी स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपात किसी से लोभ किसी का भय किसी की खुशामद किसी से छल वा किसी से धन हरने का उपाय वा किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते इनको मैंने कभी नहीं देखा और क्या जैसी सब की सत्य बात माननी और असत्य न माननी स्वामी जी की रीति है वैसी ही राजा जी आदि को मानने योग्य नहीं है? परन्तु इतने पर भी मैं बड़े आश्चर्य्य में हूं कि राजा जी आदि महाशय निष्कारण ईर्षा और परोत्कर्षासहनरूप यानारूढ़ हो स्वामी जी की बुराई करने में बढ़ते ही चले जाते हैं न जाने कब और कहां तक बढ़ेंगे क्या इस का फल आर्य्यावर्त्तादि देशों की अनुन्नति का कारण न होगा? क्यों न यह घर की फूटरूपी रसास्वादन का प्रवाह दुर्योधनरूप हलाहल सागर से बहता चला आता हुआ आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों के अभाग्योदयकारक प्रलय को प्राप्त अब तक न हुआ क्यों इस को परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से अब भी नहीं रोक देता कि जिस से हम सब सर्वतन्त्रसिद्धान्तरूप प्रेमसागरामृतोदधि में स्नान कर त्रिविध ताप से छूट कर परमानन्द को प्राप्त हों जैसे द्वीपद्वीपान्तर के वासी मुसलमान, जैन, ईसाई, आदि मनुष्य अपने स्वदेशी और

स्वमतस्थों को आनन्दित कर रहे हैं क्या ऐसे हम लोगों को न होना चाहिये प्रत्युत सब देशस्थ समग्र मनुष्यादि प्राणिमात्र के लिये परस्पर उपकार विद्या शुभाचरण और पुरुषार्थ कर अपने पूर्वज कि जिन महाशय आर्यों के हम सन्तान हैं उन का दृष्टान्त अर्थात् उपमेय न हों और जैसी उन की कीर्त्ति और प्रतापरूप मार्त्तण्ड भूगोल में प्रकाशित होरहा था उन का अनुकरण क्यों न करें और इस में आश्चर्य्य कोई क्यों मानें कि राजा जी और उन के अनुयायी साक्षी स्वामी जी को अविद्वान् पशु अन्धे आदि यथेष्ट शब्दों से निन्दा करते हैं मैं निश्चित कहता हूं कि स्वामी जी की निन्दा अप्रतिष्ठा और विरोधता किस ने नहीं की काशी में संवत् १९२६ वें वर्ष में उनपर हल्ला किया संखिया मिलाकर पान बीड़ा दिया बुरी बुरी निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये कई ठिकाने मारने को आये ऊपर पत्थर और धूल फेंकी जिले बुलन्दशहर करणवास के समीप जहां स्वामी जी रहते थे वहीं किसी ने रात के १ बजे के समय १० आदमी तलवार और लट्ठ ले कर मारने को भेजे कई नास्तिक कहते कई क्श्चीन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते कई उन का मुख देखने में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते कोई कलि का अवतार कोई कल मरते आज ही मरजाय तो अच्छा कई मजिष्ट्रेटों के कान भर व्याख्यान बन्द करा देने में प्रयत्न कर चुके और कोई इन के बनाये पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना कई अपने बाग बगीचों में उन का रहना भी स्वीकार नहीं करते कई वेश्या का मुख देखने, सङ्ग करने और पुंसि मैथुनाचरण में भी अपना धन्य जन्म मानते और औरों को उत्साहित करते हैं और स्वामी जी का दर्शन और सङ्ग उस से भी बुरा बतलाते हैं कई स्वामी जी और स्वामी जी के उपदेश मानने वालों को महानरक में गिरना चितलाते हैं। आप गौतम और कणादादि महाशयों से अपने को बुद्धि सागर ठहराते और स्वामी जी को निर्बुद्धि सहज प्रश्नों के उत्तर के अदाता कहते और कई चमार चाण्डाल आदि में विद्वत्ता और मनुष्य होने की शङ्का नहीं करते और स्वामी जी में विद्वत्ता के होने और मनुष्यपन में भी शङ्का बतलाते हैं कोई रेल का भाड़ा भी नहीं लगता ऐसा कहते हैं अब कहां तक इस लम्बी गाथा को कहूं मैं ऐसी बातें सुनता और लिखता हुआ थकित हो गया क्या ये पूर्वोक्त बातें आर्य्यावर्त्त के दौर्भाग्य के कारण नहीं हो रही हैं तथापि धन्य है स्वामी जी को इतने हुए पर भी सनातन वेदोक्त आर्य्योन्नति के यत्नों से विरक्त न हो कर परोपकार से अपना जन्म सफल कर रहे हैं भला जो धर्म्म और परमात्मा की

कृपा न होती और परमत द्वेषी स्वमतानुरागी क्षुद्राशय लोगों का राज्य होता तो स्वामी जी का आज तक शरीर बचना भी दुस्तर न हो जाता क्या ! जो आर्य्य लोग भी मुसलमान आदि के तुल्य होते तो अब तक स्वामी जी का मुख और हस्त वेदभाष्यादि पुस्तक लिखने के लिये आज तक कुशल रह सकते? और जो स्वामी जी में पक्षपातराहित्य सत्यता विद्वत्ता शान्ति निन्दा स्तुति में हर्ष शोक रहितता न होती और विमलविद्याप्रगल्भता धार्मिकता आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे२ सनातन वेदोक्त सत्य धर्मोपदेशादि प्रशंसनीय आर्य्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते क्योंकि देखो आर्य्यावर्त्त में प्रशंसनीय महाशय विद्वानों के विद्यमान रहते भी आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों की वेदोक्तधर्माढ्यता प्राचीन अभ्युदयोदय प्रच्छन्न क्यों रह जाता? क्या प्रत्यक्ष में भी भ्रम है कि देखिये जो हम आर्यों को विना आसमानी किताब वाले बुत्परस्त नालायक़ इन के मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेपों से जैन, मुसलमान और ईसाई लाखों क्रोड़ों बहका के अपने मत में मिलाते और कहते थे कि आओ हम से वाद विवाद करो हमारा मजहब सच्चा और तुम्हारा झूंठा है वे ही अब स्वामी जी के सामने वेदादि शास्त्रों और तदुक्त आर्य्यधर्म का खण्डन तो दूर रहा परन्तु वाद करना भी असह्य समझते और कहते हैं कि आप हम पर प्रश्न मत कीजिये डरते हैं स्वामी जी के सन्मुख तो ऐसा है परन्तु जिन्हों ने स्वामी जी के ग्रन्थ देखे और उन का समागम यथावत् किया है उन के भी सामने वे विजयवन्त नहीं हो सकते इत्यादि, जो राजा जी आदि स्वामी जी के स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव जानते तो उन के साथ ऐसा विरुद्ध वर्त्तमान कभी न करते सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक सर्वनियन्ता जगदीश्वर सब आर्य्यों के आत्माओं में परस्पर प्रीति गुण स्वीकार, दोष परिहार वेदविद्योन्नतिरूप कल्पवृक्ष और चिन्तामणि को सुस्थिर करे जिस से सब आर्य्य भाई उस को परस्पर प्रेम और उपकार रूप सुन्दर जल से सींच कर उस के आश्रय से प्राचीन आर्य्यपदवी को पाकर आनन्द में सदा रहें और सब को रक्खें ॥

राजा जी का बनाया इतिहास मैंने देखा तो अद्भुत बातें दिखाती हैं इन से यह भी प्रसिद्ध है कि जो स्वश्लाघा और अभिमान करेगा तो इतना ही करेगा निम्न लेख से यह बात सब को विदित हो जायगी क्योंकि इङ्गित चेष्टित से मनुष्य का अभिप्राय गुप्त नहीं रह सकता राजा जी का कुछ अभी ऐसा वर्त्तमान है सो नहीं किन्तु (स्वभावो नान्यथा भवेत्) जैसा स्वभाव मनुष्य का होता है वह छूटना दुस्तर है

जो उन्हों ने इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ बनाया है उस को कोई विद्वान् पक्षपात रहित सज्जन पुरुष ध्यान देकर देखे तो राजा जी की मानस परीक्षा और सौजन्य विदित अवश्य हो जावे कि इन का क्या अभीष्ट है उस में अप्रमाण वेदादिशास्त्राभिप्रायशून्य बहुत बातें हैं और कुछ अच्छी भी हैं जो अच्छी हैं उन का स्वीकार और जो अन्यथा हैं उन के संक्षेप से दोष भी प्रकाशित करता हूं जैसा मुझ को विदित होता है इतिहासतिमिरनाशक पृष्ठ १ । पंक्ति ११ (बाप, दादा और पुरखा तो क्या हम इस ग्रन्थ में उस समय से लेकर जिस से आगे किसी को कुछ मालूम नहीं आज पर्य्यन्त अपने देश की अवस्था लिखने का मंसूबा रखते हैं) राजा जी थोड़ासा भी शोचते तो इतना अपना गौरव अपने हाथ से लिखने में अवश्य कम्प जाकर रुक के यथार्थ बात को समझ सकते । क्या अपने पुरुखों से स्वयं उत्तम और सब आर्य्यावर्त्त वासियों को इतिहासज्ञानविषय में निकृष्ट अज्ञानी कर स्वश्लाघी स्वयं नहीं बने हैं ! क्या कोई भी पूर्णविद्वान् स्वमुख से अपनी कीर्त्ति को कह सकता है । यह सच है कि जितना २ विद्याविनय मनुष्य को अधिक होता है उतना २ वह सुशील निरभिमानी महाशय होता और जितना २ वह कम होता है उतनी २ उस को कुशीलता अभिमान और स्वल्पाशयता होती है । इति० पृष्ठ १—१८ (पुराना हाल जैसा इस देश का बेठौर ठिकाने देखने में आता है विरले किसी दूसरे देश का मिले गा) वाह वाह !!! न जाने किस देश की पाठशाला में इतिहासों को पढ़ के राजा जी को अपूर्व विज्ञान हुआ । क्या यूरोप अमरिका एफरिका आदि देशों के पूर्व इतिहासों से भी आर्य्यावर्त्त देश का प्राचीन इतिहास बुरा है यह भी इन का लेख आर्य्य लोगों को ध्यान में रखना चाहिये । इतिहा० पृष्ठ ३ । पङ्क्ति २ । (आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रखना सहज है निदान ये भाट इसी में बड़ाई समझते हैं) क्या ही शोक की बात है कि मनुवाल्मीकि व्यास प्रभृति ऋषि महर्षि महात्मा महाशय ब्राह्मण लोगों को तो राजा जी भाट ठहराते हैं और आप महात्माओं के निन्दक और उपहास कर्त्ता हो कर नकली की पदवी को धारण करते हैं विदित होता है कि आर्य्यावर्त्तीय धार्म्मिक आप्तपुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति ही से राजा जी प्रसन्न बनते हैं । इतिहा० पृष्ठ ४ पं० ३०(हाय हमारे देश में इतना भी कोई समझने वाला नहीं)सिवाय आप के ऐसी २ गूढ़ बातों के मर्म को कौन समझ सकता है तब ही तो आप सब से बड़ा

मंसूबा बांध कर इतिहास लिखने को प्रवृत हुए। इतिहा० पृष्ठ १० (बहुतेरे हिंदू यह भी कहेंगें कि जो बात पोथी में लिखी गई और परम्परा से सब हिंदू मानते चले आये भला अब वह क्योंकर झूठ ठहर सकती है) भला यहां तो हिन्दूओं की परम्परा का तिरस्कार राजा जी कर चुके और दोनों निवेदनों में ब्राह्मण पुस्तकों को वेद मानने के लिये स्वीकार किया है ठीक है मतलबसिन्धु ऐसी ही चतुराई से पूरा करना होता है। इतिहा० पृष्ठ १२। पं० १। से लेकर पृष्ठ १४ पं० ११ तक बौद्ध जैन, हिंदुओं। के मत विषयक बातें लिखी हैं इस से विदित होता है कि राजा जी का मत बौद्ध जैनी ही है। इसी लिये अपने मत की प्रशंसा वैदिकमत की निन्दा मनमानी की है। यह इन को अच्छा समय मिला कि कोई जानें नहीं और वैदिक मत की जड़ उखाड़ने पर सदा इन की चेष्टा है पुनः स्वामी जी जो सनातन रीति से वेदों का निर्दोष सत्य अर्थ ठीक २ प्रकाशित कर रहे हैं इन को अच्छा कब लग सकता है इस लिये निवेदनों में भी अपनी सदा की चाल पर राजा जी चलते हैं इस में क्या आश्चर्य है। इतिहा० पृष्ठ१५ । पं० १। (हिन्दुओं की प्राचीन अवस्था०) यह बड़ा अनर्थ राजा जी का है कि आर्यों को हिन्दू और पारश देश से आये हैं। पहिली बात तो इन की निर्मूल है क्योंकि वेदों से लेके महाभारत तक किसी ग्रन्थ में आर्यों को हिन्दू नहीं लिखा कौन जाने राजा जी के पुरुखे पारस देश से ही इस देश में आये हों और उन की परम्परा से स्वदेश पारस का संस्कार अब तक चला आया हो क्या यह बात असम्भव है कि इस आर्य्यावर्त्त ही से कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई माद्री पाण्डुराजा से विवाही थी उसी समय वा आगे पीछे वहां से यहां और यहां से वहां आ जा रहने का सम्भव होसकता है और क्या जो पारस देशसे आकर ही बसे होते तो पारसी लोगों वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ? । इतिहा० पृष्ठ ० १५ पं० ५ (असुर को अहुर) नोट। पं० १३। यहां भी ऋग्वेद के आरम्भ में असुर का अर्थ सुन लिया है और उसे सूरज का नाम माना है। असुरः प्राणदाता। असुरः सर्वेषां प्राणदः। असुर राक्षस के लिये तभी से ठहराया गया जब से सुर, देव,देवता के लिये ठहरा इत्यादि) धन्य है ! (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) इस में तो कुछ दोष नहीं कि असुर को वे पारसी लोग अहुर कहैं परन्तु जो बातें ऋग्वेद के नाम से राजा जी ने लिखी हैं सब निर्मूल हैं क्योंकि ऋग्वेद के आरम्भ में तो (असुरः प्राणदाता) (असुरः सर्वेषां प्राणदः) ये नहीं हैं किन्तु ऐसा पाठ ऋग्वेद

भर में कहीं नहीं है। क्या आश्चर्य है कि ईरान वाले जिद से देव को राक्षस कहते हों। इतिहा० पृष्ठ १५ । पं० ७। (हिन्दू अपने तईं दूसरी जाति के लोगों से जुदा रहने के निमित्त आर्य पुकारते थे और इन्हीं के बसने से यह देश हिमालय से विन्ध्य तक आर्य्यावर्त्त कहलाया पारस देश वाले भी आर्य्य थे वरन इसी कारण उस को अब भी ईरान कहते हैं) क्या अद्भुत लीला है ईरान वाले तो अबतक ईरानी, पारस वाले पारसी ही बने रहे आर्य्य नाम वाले क्यों न हुए। कैसा झूठ लिखा है कि अपने जुदा रहनेके लिये आर्य्य पुकारते थे। जो ऋग्वेद की कथा भी राजा जी ने सुनी होती तो (विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः) (उत शूद्रे उतार्य्ये) इन का अर्थ यही है(आर्य्य) श्रेष्ठ और (दस्यु) दुष्ट (आर्य्य) द्विज और (शूद्र) अनार्य को कहते हैं इस को जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों लिख मारते जो इरान से आर्य्य हो जाता है तो(आरा) और (अरि) आदि शब्दों से आर्य्य शब्द सिद्ध करने में किसी को राजा जी न अटका सकेंगे। ऐसे बहुत पुरुष अपनी प्रशंसा के लिये विदेशियों की झूठी खुशामद किया ही करते हैं। इतिहा० पृष्ठ १५ पं० २८ (ईरान की पुरानी पारसी भाषा में एक प्रकार की संस्कृत थी अर्थात् उसी जड़ से निकली थी जिस से संस्कृत निकली है) भला पारसी पढ़े विना ऐसी २ गुप्त जड़ों की खोज राजा जी न होते तो कौन करता जो थोड़ासा भी विचार करते तो श्रेष्ठ गुणों से आर्य्य और एक किसी मनुष्य का नाम है आर्य्य उस से और इस देश वालों से क्या सम्बन्ध हो सकता है जिन ने दृष्टान्त संस्कृत पुरानी पारसी के उदाहरण दिये हैं ये संस्कृत से पुरानी पारसी बनी है यह ठीक है क्योंकि पारस देश का नाम निशान भी न था तब से आर्य्य और आर्य्यावर्त्त देश है। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया है तब यवन देश के सब राजा आये थे उसी ईरान का राजा शल्य भी महाभारतयुद्ध में आया ही था इस लिये राजा जी का ऐसा अनुभव केवल पारसी भाषा पढ़ने से हुआ है संस्कृत से नहीं। इतिहा० पृष्ठ १६। पं० २। से (ये आर्य्य उस समय सूर्य के उपासक थे वेद में सूर्य्य की बड़ी महिमा गाई है हिन्दुओं का मूलमन्त्र गायत्री इसी सूर्य्य की वन्दना है विष्णु इसी सूर्य्य का नाम है) राजा जी का स्वभाव सब से विलक्षण है ! कोई कहता हो दिन तो वे रात कहें यद्यपि वेदों में सूर्य्य शब्द से परमेश्वर आदि कई अर्थ प्रकरण से भिन्न २ कहे हैं परन्तु उपासना में सूर्य्य शब्द से जिस को गायत्री मन्त्र कहता और जो व्यापकता से विष्णु है वहां परमेश्वर ही लिया है अन्यत्र भौतिक। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० १। (आकाश को इन्द्र ठ

हराया) वेदों में इन्द्र शब्द से आकाश का ग्रहण कहीं नहीं किया है। हां राजा जी ने अपनी कल्पना से समझा होगा। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० ३ (गाय, बैल, घोड़ा, भेड़,और बकरी इत्यादि का बलि देते थे और उन का मांस भून भून और उबाल २ कर खाते थे। नोट–ऋग्वेद में एक अश्वमेध का हाल यों लिखा है घोड़े के आगे रङ्ग बिरङ्ग की बकरियां रख कर उस से अग्नि की परिक्रमा दिलाई और फिर खम्भे से बांध कर और फरसे से काट कर उस का गोस्त सींक पर भूना और उबाला और गोले बना कर खा गये)हाय ऐसे अनर्थ लेख से वेद और आर्य्यों की निन्दा कर राजा जी ने सन्तुष्टि क्यों की! क्योंकि गाय आदि पशुओं का मारना वेदों में कहीं नहीं लिखा न शराब का पीना और अश्वमेध का ऐसा हाल कहीं भी नहीं लिखा राजा जी ने वाममार्गियों के सङ्ग से ऐसी बात कि जिस से वेदों की निन्दा हांसी हो लिखी होगी। इतिहा० पृष्ठ १६। पं० १२। (वर्ण भेद शुरू में दो ही रहा होगा अर्थात् गोरा काला वर्ण का अर्थ रङ्ग है) वाह क्या चतुराई की लटाझलक रही है क्या गोरे और काले के बीच में कोई भी रङ्ग नहीं होता और (वर्ण वाहुः पूर्वसूत्रे) वर्ण नाम अक्षर वर्ण नाम स्वीकार अर्थ क्या नहीं होते (स्वार्थी दोषन्न पश्यति) हां यह हो तो हो कि विना गोरों की प्रशंसा के स्वार्थ सिद्ध क्यों कर होता) इतिहा० पृष्ठ २० से ले के अङ्गरेज के पैर पकर ने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्तिपर्य्यन्त राजा जी ऐसी चाल चलन से चले हैं कि जिस से इस देशकी बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादिशास्त्रों की निन्दा और जैनमत की इङ्गित से प्रशंसा और अङ्गरेज़ों की प्रशंसा में जानों सब भाटों के प्रपितामह ही बन रहे हैं। क्या ही शोक की बात है कि इतिहासतिमिरनाशक के तीसरे खण्ड में कितनी बड़ी वेद आदि शास्त्रों और आर्य्य तथा आर्य्यावर्त्त देश की निन्दा लिख कर छपवाई है तो भी राजा जी के चरित्र पर किसी आर्य्य विद्वान् ने विचार कर प्रत्युत्तर नहीं किया मैं ने अल्पसामर्थ्य से (स्थालीपुलाकन्याय) के समान थोड़ासा नमूना राजा जी का दिखलाया है। इत ने ही से सब बुद्धिमान् राजा जी के और मेरे गुण दोषों का विचार यथावत् कर ही लेंगे। जिन्हों ने वेद और आर्य्यावर्त्त की गर्हा करनी ही अपनी बड़ाई समझ ली है तो स्वामी जी की निन्दा करें इस में क्या आश्चर्य है सर्वशक्तिमान् परमात्मा परमदयालु सब पर कृपा रक्खे कि कोई किसी की निन्दा न करे सत्य को मानें और झूंठ को छोड़ दे मेरा यहां यह अभिप्राय नहीं है कि किसी की व्यर्थ निन्दा करूं वा मिथ्या स्तुति, हां इतना कहता

हूं कि जितनी जिस की समझ है उतना ही कह और लिख सकता है मेरी धार्मिक विद्वानों से प्रार्थना है कि जो कुछ मुझ से अन्यथा लेख हुआ हो तो क्षमा करें और अपनी प्रशंसनीय विद्यायुक्त प्रज्ञा से उस को शुद्ध कर लेवें इस पर सत्य २ परामर्श का प्रकाश कर आर्य्यों को सुभूषित करें ॥

ऋषिकालाङ्कभूवर्षे तपस्यस्यासिते दले ।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमच्छेत्तुमकार्य्यलम् ॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतो-
अनुभ्रमोच्छेदनो
ग्रन्थः पूर्णः